भारतीय शिक्षा–प्रणाली एवं संस्कृतिः डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के संदर्भ में

डा0 अनिल कुमार सैनी,
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र
राज0 स्ना0 महाद्यिालय, गोपेश्वर, चमोली

हितेन्द्र कुमार,
संविदा शिक्षक, बी0 एड0
राज0 स्ना0 महाद्यिालय, गोपेश्वर, चमोली

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता ही भारत का विश्व के अन्य देशों से पृथक करती है। धर्म, परम्पराएं, रीति–रिवाज आदि भारतीय संस्कृति के पोषक है। वसुधैव कुटुम्बकम् इसी संस्कृति की देन है। भारतीय संस्कृति आध्यात्म पर आधारित होते हुए भी वैज्ञानिक है। आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, ऋण व्यवस्था, पुरूषार्थ, संस्कार और योग आादि भारतीय सामाजिक व्यवस्था के आधार है, जो परस्पर सम्बन्धित होते हुए वैज्ञानिकता पर आधारित थे। जिसकी प्रामाणिकता आज विभिन्न विकसित देशों द्वारा किये जा रहे अनुसंधानों से सिद्ध हो रही है। भारतीय योग एवं अध्यात्म को आज पूरा विश्व स्वीकार कर चुका है। विदेशी आक्रमणों एवं दो हजार वर्षों की दासता का भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित करने में बहुत अधिक योगदान रहा है। शिक्षा संस्कृति की संवाहक होती है इसलिए भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित करने वाले कारको में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली एक महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हुई है। क्योंकि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का मूल उद्देश्य भारतीय समाज का विकास न होकर एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना था जो ब्रिटिश साम्राज्य और पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार–प्रसार में सहायक हो सके। आधुनिक भारत के आधिकांश राजनेताओं पर पाश्चात्य संस्कृति और ब्रिटिश उदारवाद का रंग बहुत गहरा था। महात्मा गान्धी, दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक, विवेकानन्द, अरविन्द घोष, रविन्द्रनाथ टैगोर तथा डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी आदि भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ परम्पराओं के अनुयायी थे। प्रस्तुत लेख में हम 'भारतीय शिक्षा–प्रणाली एवं संस्कृति' के संदर्भ में डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के विचारों की समालोचना करेगें।

भारत में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली लागू हाने से पूर्व भारत में शिक्षा गुरुकुल व्यवस्था पर आधारित थी। गुरुकुल व्यवस्था में शिक्षा के साथ–साथ विद्या भी दी जाती थी। यहां विद्या से तात्पर्य आध्यात्मिक ज्ञान से है, जिसका मूल उद्देश्य आत्म ज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना था। गुरुकुल के द्वार सभी धर्म और जाति के लिए खुले थे, जिसमें सभी प्रकार के विषयों (लगभग 18 विषय) का ज्ञान कराया जाता था। गुरुकुल व्यवस्था हमारी संस्कृति के संवाहक थी जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा, रीति–रीवाज और परम्पराओं को नई पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता था। आगे बढ़ने से पूर्व समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में संस्कृति के अर्थ को समझना आवश्यक है। संस्कृति को विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ विद्वान् संस्कृति में केवल भौतिक पक्ष को तथा कुछ विद्वान् भौतिक तथा अभौतिक दोनों पक्षों को सम्मिलित करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में संस्कृति के अर्थ को विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी निम्नलिखित परिभाषाओं द्वारा समझा जा सकता है–

टायलर के अनुसार, "संस्कृति एक ऐसा जटिल समग्र है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा, तथा समाज के सदस्य के रूप में

मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य दूसरी समर्थताएं सम्मिलित हैं।"

मैलिनोव्स्की के अनुसार, "संस्कृति मनुष्य की कृति है तथा एक साधन है, जिसके द्वारा वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है"।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संस्कृति ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा, धर्म,रीति–रीवाज और परम्पराओं आदि का समुच्चय है, जो सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है।

गीता में कहा गया है कि **'न ही ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'**। ज्ञान से पवित्र सृष्टि में कुछ है ही नहीं। वेद कहता है कि ज्ञान और ब्रह्म पर्यायवाची है। ज्ञान का आधार विद्या है। क्योकि ज्ञान व्यक्ति को मिथ्या दृष्टि से मुक्त कराता है। जीवन तथा ईश्वर में आस्था पैदा करता है। समाज विरोधी तत्वों को दबा देने की शक्ति प्रदान करता है। हमारे अध्यात्म के चार तत्व है–आत्मा, मन, बुद्धि और शरीर। बुद्धि और शरीर शिक्षा के तथा आत्मा और मन धर्म के विषय बन गये। शिक्षा धर्म निरपेक्ष हो गयी । तब व्यक्ति स्व–धर्म की पहचान कैसे करेगा ? शिक्षा के मूल धरातल –आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तो खो ही गये हैं। व्यक्तित्व–विकास पीछे छूट गया है। योग–क्षेम की परिभाषा ही बदल गयी। ज्ञान छूट गया, विज्ञान रह गया। ब्रह्म छूट गया, माया रह गयी। अर्थात् संस्कृति खण्ड.–खण्ड. हो गयी। शास्त्र कहते हैं– **"जन्मना जायते विप्रः संस्काराद् द्विज उच्यते"**। जीवन का लक्ष्य है– अभ्युदय और निःश्रेयस। विद्या के योग से अज्ञान का आवरण हटाना, आत्म–साक्षात्कार करना (मोक्ष) ही पुरुषार्थ का लक्ष्य है। आज जीवन में पुरुष प्रकृति का स्वरूप ही नहीं रहा। जीवन रूढ़ि बन गया, मिथक बन गया, उपयोगिता की ही शिक्षा में तलाष रह गई। वसुधैव कुटुम्बकम् निजी स्वार्थ में बदल गया। व्यक्ति कमाना सीख गया, समाज को कुछ देना भी चाहिए, भूल जाता है।[1]

टी0 बी0 मैकाले द्वारा अंग्रेजों की संसद को लिखा गया पत्र जो पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था की पोल खोल देता है– मैं भारत कें कोने–कोने में घूमा हूँ, मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नही दिखाई दिया जो भिखारी हो, चोर हो ! इस देश में मैने इतनी दौलत देखी है, इतने ऊंचे चारित्रिक, आदर्श और गुणवान् मनुष्य देखे हैं कि मैं नही समझता कि हम इस देश को जीत पाएंगे, जब तक इसकी रीढ़ की हड्डी को नही तोड देते! जो है इसकी आध्यात्मिक संस्कृति और इसकी विरासत! उस के लिए मैं प्रस्ताव रखता हूँ कि हम भारतीय पुरातन शिक्षा व्यवस्था और संस्कृति को बदल डाले! क्योकि यदि भारतीय सोचने लगे कि जो भी विदेशी है वही अच्छा है और उनकी अपनी चीजों से श्रेष्ठ है तो वे अपने आत्म गौरव और अपनी ही संस्कृति को भुलाने लगेंगे! और वैसे बन जायेगें जैसा हम चाहते हैं! एक पूरी तरह से दमित देश!

बहुत ही खेद के साथ कहना पड रहा है कि मैकाले अपने इस उद्देश्य में सफल भी हुआ, और जैसा उसने कहा था कि मैं भारत की शिक्षा व्यवस्था को ऐसा बना दूंगा कि इस में पढ़ के निकलने वाला व्यक्ति सिर्फ शक्ल से भारतीय होगा और सोच से अंग्रेज। इसके परिणाम स्वरूप पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था युवाओं को काले अंग्रेज बना रही है।

उनको अंग्रेजी भाषा बोलने पर गर्व होता है,

अपनी भाषा बोलने पर शर्म आती है।

विदेशी सामान प्रयोग करने में गर्व होता है,

स्वदेशी सामान प्रयोग करने में शर्म आती है।

बच्चों को convent school में पढ़ाने में गर्व होता है,

गुरुकुल में पढ़ाने में शर्म आती है।[2]

भारत में जैसे–जैसे शिक्षा का स्तर बढ़ता जा रहा है, वैसे–वैसे भारतीय सभ्यता और संस्कृति का स्तर गिरता जा रहा है। क्योंकि शिक्षा तो सभी स्कूल दे रहे हैं लेकिन वास्तविक शिक्षा सिर्फ नाम तक सिमट गयी है। वास्तविक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जो बच्चों को अच्छे संस्कार, पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक दायित्वों ज्ञान देकर स्वस्थ समाज का निर्माण कर सके। भारतीयों के लिए इससे बडा दुर्भाग्य और क्या होगा कि हम अपने महान् सांस्कृतिक मूल्यों को भूलाकर पाश्चात्य संस्कृति की माला जप रहे हैं।

हमारी परम्परागत शिक्षा व्यवस्था आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से हर प्रकार से श्रेष्ठ थी। भारतीय वेद, उपनिषद्, आदि विश्व के सर्वोत्तम ज्ञान के स्रोत है, लेकिन भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के उद्देश्य से ब्रिटिश शासकों ने आधुनिक शिक्षा व्यवस्था तहत उन्हें गलत तरीके से प्रचारित–प्रसारित किया। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की पुस्तकों की अध्ययन सामग्री हिन्दू विरोधी, बच्चों को भटकाने वाली, शहीदों का अपमान करने वाली, इतिहास को तोड–मरोड कर प्रस्तुत करने वाली, सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित करने वाली है। भारत की शिक्षा व्यवस्था गुरुकुल परम्पराओं से निकलकर वातानुकूलित कक्षाओं तक पहुँच गयी है। शिक्षा ग्रहण कर चरित्र निर्माण करने की अपेक्षा केवल जीविकोपार्जन के लिए जीवन के प्रारम्भिक 20–25 वर्ष खपाने की व्यवस्था बन गयी है। इस व्यवस्था के अनुसार भारतीय अभिभावक ऊँचे दामों पर बच्चों के लिए डिग्री खरीदना चाहते हैं जिससे उनके बच्चें इंजीनियरिग की डिग्री लेकर विदेशों में सेट हो सके।[3] इसलिए डा0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी औपनिवेशिक शिक्षा–तंत्र अथवा पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था के मुखर विरोधी थे तथा भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा प्रणाली के कट्टर समर्थक थे।

डा0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी एक भारतीय शिक्षाविद्, चिन्तक, राजनेता और भारतीय जनसंघ के संस्थापक थे। उन्हें एक प्रखर राष्ट्रवादी के रूप में जाना जाता है। वो पण्डित नेहरु मंत्रिमंडल में उद्योग मंत्री रहे लेकिन पण्डित नेहरु के साथ मतभेदों के कारण मंत्रिमंडल और कांग्रेस पार्टी से त्याग पत्र देकर 21 अक्टूबर, 1951 को दिल्ली में 'भारतीय जनसंघ' की नींव रखी और इसके प्रथम अध्यक्ष बने। केन्द्र सरकार में मंत्री बनने से पहले वो पश्चिम बंगाल सरकार में वित मंत्री रह चुके थे। मात्र 33 वर्ष की आयु में वो कलकत्ता विश्वविद्यालय में कुलपति बन गये थे। इस पद पर नियुक्ति पाने वाले वह सबसे कम आयु के व्यक्ति थे।

डॉ0 मुखर्जी का जन्म 6 जुलाई, 1901 को कलकत्ता के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। उनके पिता श्री आशुतोष मुखर्जी एक शिक्षाविद् के रूप में विख्यात थे। उन्होंने सन् 1917 में मैट्रिक किया तथा सन् 1921 में स्नातक की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् उन्होंने बंगाली विषय में एम0 ए0 भी प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की और सन् 1924 में कानून की भी पढाई पूरी की। इस प्रकार अल्पायु में ही विद्याध्ययन के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलताएं अर्जित की और शीघ्र ही उनकी ख्याति एक शिक्षाविद् और लोकप्रिय प्रशासक के रुप में फैल गयी।[4]

डा0 मुखर्जी का कथन है कि 'हम इस बात का दुख प्रकट नहीं करते कि भारतीय समाज भी पाश्चात्य सभ्यता सीखने लग गया है अपितु इस बात की निन्दा करते हैं कि ये पाश्चात्य सभ्यता भारतीय संस्कृति के बलिदान पर भारत में आयी है। हम सबको आवश्यक था कि इन दोनों सभ्यताओं के मध्य सामंजस्य बैठाते ना कि भारतीय सभ्यता को उपेक्षित करके।' डॉ0 मुखर्जी का विचार था कि 'भारत का यश उसकी राजनीतिक संस्थाओं और सैनिक शक्ति में नहीं

अपितु उसकी आध्यात्मिक महानता, सत्य और अध्यात्म के विचारों, दुखी मानवता की सेवा में अभिव्यक्त सर्वोच्च शक्ति की विराटता में उसके विश्वास पर आधारित है।'

भारतीय शिक्षा–प्रणाली के विषय में डॉ0 मुखर्जी के विचारों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि वह भारत के औपनिवेशिक शिक्षा–तंत्र के मुखर विरोधी थे। वे भारत की तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हित–साधन का एक उपकरण मात्र बनकर रह जाने से चिंतित थे। 1952 में दिल्ली विश्वविद्यालय के 30वें दीक्षान्त समारोह में अपने सम्बोधन में उन्होंने भारत की शिक्षा को देश की प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों के अनुरूप बनाये जाने की रूपरेखा खींची, जिससे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को जीवित रखा जा सकें।

डॉ0 मुखर्जी शिक्षा–व्यवस्था को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप बनाये जाने के पक्षधर थें। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं द्वारा डॉ0 मुखर्जी के शिक्षा के परंपरागत मॉडल को पुनर्स्थापित करने के विचारों को सम्प्रदायवाद व हिन्दू अस्मिता के साथ जोड़कर देखा जाने लगा। जहाँ पण्डित नेहरू और उनके अनुयाईयों ने भारतीय स्वतन्त्रता–आन्दोलन में पाश्चात्य शिक्षा की भूमिका की सराहना की, वहीं डॉ0 मुखर्जी का यह मानना था कि विश्वविद्यालयों के औपनिवेशिक तंत्र द्वारा हमारे देश के युवाओं को दिग्भ्रमित कर अपनी जड़ों से ही काटने का कार्य अधिक हो पाया है।[5]

डॉ0 मुखर्जी बंकिमचन्द्र, दयानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, विवेकानन्द अरविन्द और महात्मा गांधी आदि मनीषियों की श्रेष्ठ परम्परा के अनुयायी थे, जिन्होंने आधुनिकता के अंधड़ में भी अपने पैरों को जमीन में जमाये रखने में सफलता प्राप्त की। डॉ0 मुखर्जी अरविन्द और तिलक की उस मान्यता के सम्पोषक थे जिसमें आध्यात्मिक (शैक्षिक) स्वराज्य को साध्य तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता को साधन मात्र माना गया है।[6]

आधुनिक भारत के अधिकांश राजनेताओं (प्रमुख रूप से पण्डित नेहरू) पर जब ब्रिटिश उदारवाद का रंग दिनोंदिन गहराता जा रहा था, डॉ0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भारत की औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली को भारतीय संस्कृति के क्षरण का सबसे प्रमुख कारण मानते हुये इसके स्वरूप को बदलने की पुरजोर माँग की। उनके शिक्षा के भारतीयकरण की माँगों को भी कांग्रेस, मुस्लिम लीग, ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुत्व के साथ जोड़कर बहुलतावादी भारतीय समाज के लिए हानिकारक बताना आरम्भ कर दिया। 22 फरवरी, 1936 के अपने द्वितीय दीक्षान्त भाषण में डॉ0 मुखर्जी ने शैक्षिक जीवन के पुनर्गठन पर अपने आदर्शों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कहा, ''हमारा आदर्श है कि हम निम्नतम से लेकर उच्चतम स्तर तक ऐसी शिक्षा की सहज सुविधा दे सकें और साथ ही शिक्षा–पद्धति को भी इस प्रकार बदलें कि हमारी शिक्षा का उद्देश्य वस्तुतः सुसम्बद्ध हो। हमारे तरुणों की छिपी हुई प्रतिभाएं जागृत हों और वे त्रिकोणात्मक (बौद्धिक, शारीरिक तथा नैतिक) शिक्षा से ऐसे सम्पन्न हों कि राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों, ग्रामों, कस्बों अथवा नगरों में एकनिष्ठ सेवाएँ दे सकें। हमारा लक्ष्य है कि हम स्वस्थ व उदार शिक्षा की अधिकतम सुविधा दे सकें, व्यावसायिक तथा शिल्प–सम्बन्धी शिक्षा का समुचित संविश्लेषण कर सकें और यह बराबर ध्यान में रखे कि कोई भी राष्ट्र अपने युवकों को मात्र भौतिक लक्ष्य को आगे रखकर, मशीनी पुर्जे बनाकर कभी महान नहीं बन सकता। हमारा आदर्श है कि हम अपने शिक्षकों को अधिक से अधिक सुविधाएं तथा अधिकार दे सकें जिससे वे उच्च ज्ञान, पवित्र आचरण तथा स्वतन्त्र बुद्धि से विभूषित होकर अपने को केवल मार्गदर्शक, ज्ञानवाहक तथा विचारों की दुनिया के मालिक ही न मानते हुए सच्चे, पौरुषमय, प्रामाणिक और देशभक्त नर–नारी, नेता और कार्यकर्ताओं का

निर्माता समझें। हमारा आदर्श है कि हम अपने विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं को राज्य तथा सार्वजनिक सहायता प्राप्त उदात्त, बौद्धिक एवं राष्ट्रीय विचारों का ऐसा केन्द्र बनाएं जहाँ शिक्षक–शिक्षार्थी किसी को भी जाति, लिंग, मजहब तथा धार्मिक व राजनीतिक विचारों के कारण किसी भी प्रकार की असुविधा न हो''।[7]

इस प्रकार हम देखते है कि डॉ0 मुखर्जी पाश्चात्य शिक्षा–प्रणाली के विरोधी नही थे, अपितु पाश्चात्य शिक्षा–प्रणाली भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की कीमत पर लागू करने के प्रबल विरोधी थे। क्यांकि अधिकांश भारतीय राजनेताओं की चेतना पर पाश्चात्य संस्कृति द्वारा अतिक्रमण कर लिया गया था, इसलिए भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के पक्षधरों (जिसमें डॉ0 मुखर्जी भी एक थे) की संख्या बहुत सीमित रह गयी थी, इसलिए उनकी इस विचारों को दबा दिया गया। जिसका परिणाम भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन के रूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष है।

प्लेटो ने कहा था, 'जीवात्मा परलोक में शिक्षा और संस्कृति के अतिरिक्त और कुछ अपने साथ नही ले जाती। परलोक की यात्रा के आरम्भ में, उस व्यक्ति के लिए जो अभी–अभी मरा है, उसकी शिक्षा और संस्कृति या तो सर्वाधिक सहायक हो सकती है, या फिर सबसे बडा बोझ बन सकती है।' प्लेटो का उक्त कथन भारतीय शिक्षा और संस्कृति के संदर्भ में चरित्रार्थ होता है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को विघटन ही नही हो रहा अपितु पाश्चात्य संस्कृति की तुलना में हेय दृष्टि से देखा जा रहा है। किसी देश की पहचान उसकी संस्कृति में निहित होती है। यदि अभी भी जागरूक प्रयास नही किये गये तो इसके दुष्परिणाम आने वाली पीढ़ी को भुगतने होगे। अतः आवश्यक है कि डॉ0 मुखर्जी के विचारों की सार्थकता को ध्यान में रखते हुये सांस्कृतिक मुल्यों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था को अपनाना होगा, ताकि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को रक्षा की जा सके।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामदीप मिश्रा, पत्रिका, जूलाई 05, 2015 (https://www.patrika.com/opinion/education-and-culture-1-1214771/)
2. राजीव दीक्षित (http://www.rajivdixitmp3.com/macaulay-letter-in-1835/)
3. प्रसाद, राजीव रंजन (http://www.indiaspeaksdaily.com/indian-education-system-and-the-ghost-of-lord-macaulay/)
4. (https://www.itshindi.com/dr-shyama-prasad-mukherjee.html)
5. Singh, Chauhan Kulveer (http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/200145)
6. मिश्र, राकेश : औपनिवेशिक काल में भारतीय राजनीतिक सिद्धान्त और संस्थाएं, तत्त्व–सिन्धु, कुमारस्वामी फाउण्डेशन, लखनऊ, 2017, पृ0 75
7. मधोक, बलराज : श्यामाप्रसाद मुखर्जी–एक हुतात्मा का शब्द चित्र, सूर्य भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ0 72–73 5

Copyright © 2017, Dr. Anil Kulmar Saini & Hitendra Kumar. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.